वर्ष : 10 | अंक : 01 | मूल्य : ₹ 70 | पृष्ठ: 56 | अप्रैल : 2026 | RNI : BIHHIN/2018/77362

राष्ट्रीय हिंदी मासिक

करेंट एजेंडा

भारत का राजपत्र
The Gazette of India

ज्ञान-विज्ञान विमुक्तये

कैंपस डेमोक्रेसी और सामाजिक न्याय

इंडेक्स

01 कैंपस लोकतंत्र : बदलती सार्वजनिकता, राज्य सत्ता और राज्य-सत्ता और भारतीय विश्वविद्यालयों का भविष्य
पेज : 6-9

02 मार्क्स से मंडल वाया अम्बेडकर : जेएनयू कैंपस की बदलती राजनीतिक धारा
पेज :10-14

03 क्या है यूजीसी रेगुलेशन : जिसका अगड़ी जातियों के लोग कर रह हैं विरोध
पेज : 15-16

04 UGC एक्विटी एक्ट-2026 : विश्वविद्यालयों में सोशल-चर्निंग
पेज : 17-19

05 यूजीसी एक्विटी एक्ट को और ज्यादा टफ बनाने की जरूरत थी
पेज : 20-23

06 सामाजिक न्याय और उत्तर प्रदेश में मेडिकल कॉलेज कैंपस : मंडल और पोस्ट-मंडल कमीशन का युग
पेज : 24-26

07 जेडीयू और नीतीश कुमार की विरासत : संकट, संघर्ष और भविष्य की राह
पेज : 27-29

08 भारत-अमेरिका : अंतरिम ट्रेड डील (फरवरी 2026) कृषि क्षेत्र पर विस्तृत फ़ायदा एवं नुक़सान
पेज : 30-32

09 SIR: मतदाता-सूची का विशेष गहन पुनरीक्षण
पेज : 33-35

10 न्यू वर्ल्ड आर्डर और दुनिया की बिसात
पेज : 36-38

11 क्या गाजा पीस बोर्ड अधूरा राजनीतिक समाधान है?
पेज : 39-41

12 एपस्टीन फाइल्स : शक्ति, सत्ता और कानून का एक घिनोंना सच
पेज : 42-44

13 पर्यावरण संरक्षण : मानव अस्तित्व, विकास और भविष्य की दिशा
पेज : 45-47

14 कैम्पस भेदभाव और सिनेमा
पेज : 48-52

15 खामोशियों का शोर: स्त्री-मन के अंतर्द्वंद्व की अभिव्यक्ति
पेज : 53

16 'वी आर विप्लवी की गजले'
पेज : 54

17 आरक्षण की ओट में, मेरिट का जाल बिछाया
पेज : 55

करेंट एजेंडा

मासिक पत्रिका

संपादक
हरिश्चन्द्र पटेल
84231 34764

सह-संपादक
डॉ. अनूप पटेल
9415455820

प्रबंध-संपादक
कौशल किशोर सिन्हा
72509 88983

ग्राफिक्स डिजाइनर
इमरान खान

उत्तर प्रदेश कार्यालय
503 अलीशा अपार्टमेंट मदन मोहन मालवीय मार्ग
सिकन्दरबाग लखनऊ पिन कोड -226001

मध्य प्रदेश कार्यालय
भेल कॉलोनी भोपाल मध्य प्रदेश पिन कोड - 462034

गुजरात कार्यालय
301/डी जीवराज नगरी अम्बिका टाउनशिप नाना
मौवा राजकोट गुजरात 36000

बिहार कार्यालय
ग्राम वा पोस्ट कुथरौल नियर रेलवे लाइन के पास
पटना बिहार पिन कोड 804453

उत्तराखंड कार्यालय
ईश्वर विहार सुंदर बाला रायपुर रोड देहरादून
देहरादून उत्तराखंड पिन कोड 248008

झारखंड कार्यालय
श्याम नगर गांधीनगर सीसीएल कॉलोनी नजदीक
सीनियर एडीवी स्कूल गांधीनगर कांके रोड रांची
झारखंड पिन कोड 834008

45
पर्यावरण संरक्षण

वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण केवल एक सामाजिक मुद्दा नहीं रह गया है, बल्कि यह मानव अस्तित्व से जुड़ा एक अत्यंत गंभीर प्रश्न बन चुका है। आधुनिक विकास, औद्योगिकीकरण और तकनीकी प्रगति ने जीवन को सुविधाजनक अवश्य बनाया है, किन्तु इसके परिणामस्वरूप प्रकृति पर अत्यधिक दबाव भी पड़ा है। आज वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन, वनों की कटाई और जैव-विविधता का ह्रास जैसी समस्याएँ निरंतर बढ़ रही हैं।

स्वामी मुद्रक प्रकाशक हरिश्चंद्र पटेल द्वारा वात्यान मीडिया एवं पब्लिकेशन प्रा० लि० धरहरा कोठी बैंक रोड पटना बिहार पिनकोड 800001 से मुद्रित एवं ग्राम एवं पोस्ट कुथरौल (नियर रेलवे लाइन) पटना बिहार पिनकोड 804453 से प्रकाशित

समस्त विवादों का न्याय क्षेत्र पटना न्यायालय होगा।

पत्रिका को मंगाने के लिए संपर्क करें।

Mobile No :- 94154 55820

Email- currentagenda860@gmail.com

भारत मे यूजीसी इक्विटी एक्ट-2026 आने से भारत में एक गहरा वैचारिक और जातीय विभाजन हो गया है। यूनिवर्सिटी कैंपस मे दलित, आदिवासी और ओबीसी वर्ग के छात्र, कर्मचारी और शिक्षक के साथ होने वाले जातीय भेदभाव को रोकने के लिए लाए गए यूजीसी समता विनियम-2026 के आते ही सामान्य वर्ग के द्वारा एक्ट का विरोध किया गया।

यूजीसी एक्ट–2026

फैसले का सुप्रीम इंतज़ार

अंतर्राष्ट्रीय मंच मे इस समय चारों तरफ अराजकता और युद्ध का माहौल है। दुनिया के ताकतवर देशों ने अपने हितों के लिये सभी रूल-बेस्ड सस्थानों की धज्जियां उड़ा रहे है। डोनाल्ड ट्रम्प के दूसरी बार संयुक्त राज्य अमेरिका के राष्ट्रपति बनने के बाद अमेरिका अपनी खोई हुई आर्थिक-सामरिक और तकनीकी ताकत को रीवाइव करने के लिये सभी अन्तराष्ट्रीय कानून और नियमों को खारिज कर फ्रन्ट-फुट पर युद्ध या धमकी के द्वारा दुनिया को दोबारा नियंत्रण करने की कोशिश मे लगा हुआ है। संयुक्त राष्ट्र और जिनेवा कन्वेन्शन का महत्व सिर्फ कागज पर रह गया है। पहले गजा संकट, ईरान-इजराइल युद्ध और अब ईरान- अमरीका, इजराइल के संयुक्त युद्ध ने पूरी दुनिया को अस्थिर कर दिया है। अमेरिका द्वारा ईरान के सर्वोच्च लीडर अयातोल्लाह खामेनाई को घर मे घुसकर मार देना अंतर्राष्ट्रीय स्तर की बड़ी घटना है, जिसके दूरगामी असर होंगे। वही ट्रम्प-टैरिफ द्वारा अमेरिका वैश्विक अर्थव्यवस्था को रीसेट करने मे लगा है जिससे अमेरिका का दरोगागिरी कायम हो। वर्तमान ईरान संकट से दुनिया मे खनिज तेल और गैस के दामों पर बेतहाशा वृद्धि हुई है। इसका असर भारत समेत पूरी दुनिया पर पड रहा है।

इधर भारत मे यूजीसी इक्विटी एक्ट-2026 आने से भारत मे एक गहरा वैचारिक और जातीय विभाजन हो गया है। यूनीवर्सिटी कैंपस मे दलित, आदिवासी और ओबीसी वर्ग के छात्र, कर्मचारी और शिक्षक के साथ होने वाले जातीय भेदभाव को रोकने के लिए गए यूजीसी समता विनियम-2026 के आते ही सामान्य वर्ग के द्वारा एक्ट का विरोध किया गया। कॉर्पोरेट मीडिया ने एक तरह से इस एक्ट के खिलाफ बिगुल फूँक दिया। बाद मे सुप्रीम कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश ने इस एक्ट पर स्टे लगा दिया। स्टे लगने के बाद अब देश के कॅम्पसो मे बहुजन वर्ग की हलचल जारी है। एक्ट के विरोध मे कॉर्पोरेट मीडिया, लिबरल जमात और सामान्य वर्ग के युटुबर/इंफ़्लूसर ने ऐसा माहौल बनाया कि मेरिट की हत्या हो जाएगी. सोशल मीडिया मे शिक्षा मंत्री धर्मेन्द्र प्रधान के खिलाफ में गाली-गलौच हुआ, प्रधानमंत्री को हिन्दू हृदय सम्राट की पदवी से उतारकर उनकी जाति विशेष पर लाँछन लगाये गये। सुप्रीम कोर्ट ने एक्ट पर स्टे लगा दिया है। इंटरेस्टिंग बात ये है कि कोर्ट ने ही सरकार को यूनिवर्सिटी कैंपस में सख्त नियम बनाने को कहा था।

सामान्य वर्ग के द्वारा जिस भाषा और तरीके से विरोध हुआ, उससे देश के बहुजन वर्ग के कान खड़े हो गये। यूजीसी ने अपनी एक रिपोर्ट बताया कि जातीय भेदभाव के आंकड़ों मे 118% की वृद्धि हुई है। एक्ट पर अगली सुनवाई 19 मार्च को होगी। 19 मार्च से देश मे काफ़ी कुछ बदलने वाला है।

यूजीसी एक्ट के चलते यूनिवर्सिटी कैम्पसों मे सामान्य हिन्दू और बहुजन हिन्दुओ के बीच जो विभाजन हुआ है,वो कहीं से भी ठीक नहीं है। इस एक्ट में अगर कुछ विसंगतियां है, उन्हे तुरंत दूर करना चाहिए लेकिन एक्ट को डिसमिस नहीं करना चाहिए। क्योंकि पहली बार एससी एसटी ओबीसी के साथ दिव्यांग जनों और महिलाओं के लिए न्याय की बात की गई है। तो क्या हिंदू समाज में ऐसा डर है कि इन लोगों को न्याय देने से नुकसान होगा। इस एक्ट ने देश के बहुजन हिंदुओं के बीच सोशल चर्निंग पैदा कर दी है। ओबीसी वर्ग के लिये वर्ष 1990 और वर्ष 2008 महत्वपूर्ण साल थे (1990 में मंडल कमीशन की सिफ़ारिशे लागू हुई, वर्ष 2008 में मंडल- पार्ट दो लागू हुआ था।) उस समय ओबीसी इस तरीके से सक्रिय नहीं था। लेकिन इस बार ओबीसी वर्ग सड़क से लेकर सदन तक इस मुद्दे पर सक्रिय दिख रहा है, जिसे दलित वर्ग का भरपूर साथ मिल रहा है। यूजीसी एक्ट को लेकर धरना प्रदर्शन बंद नहीं हो रहे। विरोध प्रदर्शनो की संख्या लगातार बढ़ रही हैं। बहुजन हिंदूओ ने पहली बार एक "बहुजन सिविल सोसाइटी" की आवश्यकता को महसूस किया है। उनको यह महसूस हुआ है कि जिन लीडर पर हम भरोसा करते है कि ये हमारा प्रतिनिधित्व करेंगे, ये लीडर ऐन मौके पर हमारे साथ नहीं रहते हैं। ऐसी सिविल सोसाइटी की जरूरत है जिसमे सोशल एक्टिविस्ट हो, डॉक्टर हो, इंजीनियर हो, कर्मचारी हो, टीचर हो और और व्यवसाई हो।

- डा. अनूप पटेल

कैंपस लोकतंत्र : बदलती सार्वजनिकता राज्य सत्ता

भारतीय विश्वविद्यालयों का भविष्य और चुनोतियां

सचिन देव

पीएचडी स्टूडेंट इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

लोकतंत्र को यदि केवल चुनावी प्रक्रिया या संवैधानिक प्रावधानों के माध्यम से समझा जाए तो उसका अर्थ अत्यंत सीमित रह जाता है। लोकतंत्र मूलतः एक नैतिक-सामाजिक संस्कृति है, एक ऐसा वातावरण जिसमें नागरिक प्रश्न पूछ सकते हैं, असहमति जता सकते हैं और सत्ता से जवाबदेही की अपेक्षा कर सकते हैं। जॉन डेवी ने लोकतंत्र को "associated living" कहा था, साझा जीवन की वह पद्धति जिसमें संवाद के माध्यम से सामाजिक निर्णय निर्मित होते हैं।यदि लोकतंत्र एक जीवित प्रक्रिया है, तो उसका निर्माण-स्थल भी होना चाहिए। संसद, न्यायपालिका और मीडिया औपचारिक संस्थाएँ हैं; परंतु लोकतांत्रिक चेतना का निर्माण उन स्थानों पर होता है जहाँ युवा विचारों से टकराते हैं, बहस करते हैं और स्वयं को सार्वजनिक जीवन का सक्रिय भागीदार मानते हैं। विश्वविद्यालय ऐसे ही स्थल हैं।

"कैंपस लोकतंत्र" इस व्यापक अनुभव का नाम है। यह केवल छात्र संघ चुनावों तक सीमित नहीं है। यह उस वातावरण का संकेत है जिसमें प्रतिनिधित्व, बहुलता और आलोचनात्मक विवेक सुरक्षित हों। जब छात्र अपने विश्वविद्यालय में खुलकर बहस कर सकते हैं, सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से असहमति व्यक्त कर सकते हैं, प्रशासनिक निर्णयों पर सवाल उठा सकते हैं और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर हस्तक्षेप कर सकते हैं, तभी कैंपस लोकतंत्र जीवित होता है। परंतु यह लोकतंत्र स्थिर नहीं है। वह निरंतर बदलता है, और उसका स्वरूप राज्य, समाज और बाज़ार के साथ संबंधों से प्रभावित होता है। भारतीय विश्वविद्यालयों की यात्रा इसी बदलती सार्वजनिकता की कहानी है।

1975

का आपातकाल इस तनाव का चरम था। विश्वविद्यालयों ने अनुभव किया कि लोकतांत्रिक राज्य भी संकट के समय अनुशासनात्मक रूप ग्रहण कर सकता है।

विश्वविद्यालय और सार्वजनिक क्षेत्र

जुर्गेन हाबर्मास की "सार्वजनिक क्षेत्र" की अवधारणा विश्वविद्यालयों की भूमिका को समझने का सशक्त ढाँचा प्रदान करती है। सार्वजनिक क्षेत्र वह स्थान है जहाँ नागरिक तर्कपूर्ण संवाद के माध्यम से सत्ता की समीक्षा करते हैं। विश्वविद्यालय लंबे समय तक ऐसे ही स्थल रहे हैं, जहाँ ज्ञान का उत्पादन केवल पेशेवर प्रशिक्षण के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक विमर्श के लिए होता रहा है। औपनिवेशिक काल में स्थापित विश्वविद्यालय प्रारंभ में प्रशासनिक आवश्यकता का परिणाम थे। अंग्रेज़ी शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसा मध्यवर्ग तैयार करना था, जो शासन-व्यवस्था में सहयोग करे। मिशेल फूको के अनुसार आधुनिक सत्ता ज्ञान के माध्यम से समाज को अनुशासित करती है। औपनिवेशिक विश्वविद्यालय इसी ज्ञान-सत्ता संरचना का हिस्सा थे। परंतु ज्ञान की प्रकृति अंतर्विरोधी होती है। वही शिक्षा जिसने शासन को स्थिर किया, उसने उसकी आलोचना भी उत्पन्न की। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय जैसे संस्थानों में राष्ट्र की भिन्न-भिन्न कल्पनाएँ विकसित हुईं। छात्र आंदोलनों ने राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई। विश्वविद्यालय धीरे-धीरे प्रतिरोध के सार्वजनिक मंच बन गए। स्वतंत्रता के बाद विश्वविद्यालयों को राष्ट्र-निर्माण की परियोजना का केंद्र माना गया। उन्हें आधुनिक भारत के नैतिक स्तंभों के रूप में देखा गया। दिल्ली विश्वविद्यालय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और बाद में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय ने बहस और राजनीतिक सक्रियता की संस्कृति विकसित की। छात्र संघ चुनाव लोकतांत्रिक प्रशिक्षण का माध्यम बने। परंतु यह मॉडल अंतर्विरोधों से मुक्त नहीं था। विश्वविद्यालय वित्तीय रूप से राज्य पर निर्भर थे। स्वायत्तता और नियंत्रण के बीच तनाव बना रहा। 1975 का आपातकाल इस तनाव का चरम था। विश्वविद्यालयों ने अनुभव किया कि लोकतांत्रिक राज्य भी संकट के समय अनुशासनात्मक रूप ग्रहण कर सकता है। यहाँ से स्पष्ट हुआ कि कैंपस लोकतंत्र राज्य की प्रकृति से गहराई से जुड़ा हुआ प्रश्न है।

सामाजिक प्रतिनिधित्व, मंडल और ज्ञान की पुनर्संरचना

डॉ. भीमराव आंबेडकर ने संविधान-निर्माण के समय चेतावनी दी थी कि यदि सामाजिक और आर्थिक असमानताएँ बनी रहें, तो राजनीतिक लोकतंत्र केवल औपचारिक ढाँचा बनकर रह जाएगा। उनका यह कथन—कि "राजनीतिक समानता और सामाजिक-आर्थिक असमानता का सह-अस्तित्व लोकतंत्र को विस्फोटक बना सकता है", भारतीय विश्वविद्यालयों के संदर्भ में विशेष रूप से प्रासंगिक है। स्वतंत्रता के बाद लंबे समय तक विश्वविद्यालयों की सामाजिक संरचना सीमित रही। उच्च शिक्षा तक पहुँच मुख्यतः उच्च जातीय, उच्च वर्गीय और शहरी मध्यमवर्गीय समूहों तक केंद्रित थी। विश्वविद्यालय औपचारिक रूप से सार्वजनिक संस्थान थे, पर सामाजिक दृष्टि से सीमित। यह स्थिति केवल प्रवेश-प्रक्रिया का परिणाम नहीं थी; इसके पीछे ऐतिहासिक वंचना, संसाधनों की असमान उपलब्धता और शैक्षिक पूँजी का असमान वितरण था।

1990 के दशक में मंडल आयोग की सिफारिशों के लागू होने से इस संरचना में महत्वपूर्ण हस्तक्षेप हुआ। अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) के छात्रों की उपस्थिति बढ़ी और प्रतिनिधित्व का प्रश्न व्यापक सामाजिक विमर्श के केंद्र में आया। इससे पहले भी अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लिए आरक्षण की संवैधानिक व्यवस्था मौजूद थी, पर मंडल के बाद सामाजिक प्रतिनिधित्व की बहस अधिक व्यापक हुई। अखिल भारतीय उच्च शिक्षा सर्वेक्षण (AISHE) के आँकड़े बताते हैं कि उच्च शिक्षा में SC और ST छात्रों की भागीदारी बढ़ी है और महिला नामांकन लगभग आधा हो चुका है। पहली दृष्टि में यह उच्च शिक्षा के लोकतंत्रीकरण का संकेत देता है। फिर भी प्रतिनिधित्व को केवल प्रवेश-आँकड़ों से नहीं समझा जा सकता। यदि छात्र विविध पृष्ठभूमियों से आते हैं, परंतु अध्यापक-वर्ग और प्रशासनिक संरचना अपेक्षाकृत एकरूपी बनी रहती है, तो ज्ञान-उत्पादन की दिशा सीमित रहती है। फैकल्टी नियुक्तियों के संदर्भ में यह प्रश्न विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। कई केंद्रीय और राज्य विश्वविद्यालयों में आरक्षित पद वर्षों तक रिक्त रहते हैं और चयन प्रक्रिया में बार-बार "Not Found Suitable" (NFS) का प्रयोग किया जाता है। औपचारिक रूप से प्रक्रिया पारदर्शी हो सकती है, पर यदि परिणाम लगातार असमानता को पुनरुत्पादित करें, तो चयन के मानदंडों पर पुनर्विचार आवश्यक हो जाता है।

यहाँ एंतोनियो ग्राम्शी की "वर्चस्व" (hegemony) की अवधारणा उपयोगी है। ग्राम्शी के अनुसार प्रभुत्व केवल राजनीतिक शक्ति से नहीं, बल्कि सांस्कृतिक और बौद्धिक सहमति के माध्यम से स्थापित होता है। यदि विश्वविद्यालयों में "योग्यता" के मानदंड ऐतिहासिक रूप से विशेष सामाजिक समूहों की शैक्षिक पूँजी को प्राथमिकता दें, तो वे अनजाने में वर्चस्व को पुनरुत्पादित कर सकते हैं। "योग्यता" की अवधारणा स्वयं सामाजिक रूप से निर्मित होती है। यदि किसी छात्र ने संसाधन-विहीन या ग्रामीण विद्यालय से शिक्षा प्राप्त की है और उसके पास महानगरीय वर्ग जैसी सांस्कृतिक पूँजी नहीं है, तो केवल प्रकाशनों की संख्या या अंग्रेज़ी में दक्षता को "उपयुक्तता" का मानदंड मानना पर्याप्त नहीं हो सकता। यह प्रश्न केवल न्याय का नहीं, बल्कि ज्ञान की गुणवत्ता का भी है। विविध सामाजिक पृष्ठभूमियों से आने वाले अध्यापक और शोधकर्ता नए प्रश्न उठाते हैं और ज्ञान की दिशा का विस्तार करते हैं। मंडल के बाद विमर्श की दिशा भी बदली। जाति, पहचान, सामाजिक अपमान और प्रतिनिधित्व जैसे प्रश्न अकादमिक चर्चा के केंद्र में आए। यह परिवर्तन केवल राजनीतिक नहीं, बल्कि ज्ञानमीमांसीय था—ज्ञान के स्रोत और विषय-वस्तु का पुनर्संरचन हुआ। आंबेडकर का आग्रह था कि लोकतंत्र केवल शासन-व्यवस्था नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों का पुनर्गठन है। यदि विश्वविद्यालयों में सामाजिक संबंध बराबरी पर आधारित नहीं होंगे और निर्णय-प्रक्रिया में विविधता का प्रतिनिधित्व नहीं होगा, तो कैंपस लोकतंत्र अधूरा रहेगा। प्रतिनिधित्व का अर्थ केवल प्रवेश या नियुक्ति नहीं; वह गरिमा और सम्मान की अनुभूति से भी जुड़ा है। यदि वंचित समुदायों से आने वाले छात्र और अध्यापक स्वयं को हाशिए पर महसूस करते हैं, तो औपचारिक प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं होगा। दलित और आदिवासी छात्रों की आत्महत्या की घटनाएँ इसी संदर्भ में संस्थागत वातावरण पर गंभीर प्रश्न उठाती हैं।

रोहित वेमुला की आत्महत्या ने इस मुद्दे को राष्ट्रीय विमर्श का विषय बना दिया। समान अवसर प्रकोष्ठ (Equal Opportunity Cells), SC/ST Cells और मेंटरशिप कार्यक्रम महत्वपूर्ण कदम हैं, पर उनका प्रभाव तभी होगा जब वे सक्रिय और उत्तरदायी हों। कैंपस लोकतंत्र की वास्तविक परीक्षा यह है कि वह अपने सबसे कमजोर सदस्य के लिए कितना सुरक्षित और सम्मानजनक वातावरण निर्मित करता है। लोकतंत्र केवल बहुमत की आवाज़ नहीं; वह अल्पसंख्यक की सुरक्षा भी है। अंततः प्रश्न यह है कि क्या भारतीय विश्वविद्यालय सामाजिक लोकतंत्र की दिशा में अग्रसर हैं, या वे केवल राजनीतिक लोकतंत्र की औपचारिकता निभा रहे हैं। यदि ज्ञान की संरचना में विविधता होगी और "योग्यता" की परिभाषा ऐतिहासिक असमानताओं को ध्यान में रखेगी, तो विश्वविद्यालय लोकतांत्रिक सार्वजनिकता के वास्तविक स्थल बन सकते हैं। अन्यथा वे समानता के दावे के साथ असमानता को पुनरुत्पादित करने वाली संरचनाएँ भी बन सकते हैं। कैंपस लोकतंत्र की असली परीक्षा यही है—क्या वह सामाजिक न्याय को केवल नीति में स्वीकार करता है, या ज्ञान की संरचना में भी उसे स्थान देता है।

पब्लिक स्पेस का संकुचन और प्रशासनिक केंद्रीकरण: सार्वजनिकता का बदलता भूगोल

पिछले एक दशक में भारतीय विश्वविद्यालयों के भौतिक और वैचारिक भूगोल में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देता है। जो परिसर कभी बहसों, पोस्टरों और नुक्कड़-सभाओं से जीवंत रहते थे, वहाँ अब गतिविधियों के लिए अनुमति-प्रक्रियाएँ अधिक औपचारिक हो गई हैं। धरना-स्थल सीमित हुए हैं और कई परिसरों में सीसीटीवी, बायोमेट्रिक उपस्थिति तथा नियंत्रित प्रवेश जैसी निगरानी व्यवस्थाएँ बढ़ी हैं। यह परिवर्तन केवल प्रशासनिक अनुशासन का प्रश्न नहीं; यह सार्वजनिकता की संरचना में बदलाव का संकेत है। जब अनौपचारिक संवाद की जगह नियंत्रित गतिविधियाँ लेती हैं, तो लोकतांत्रिक ऊर्जा का स्वाभाविक प्रवाह प्रभावित होता है।

मिशेल फूको के अनुशासनात्मक सत्ता सिद्धांत के अनुसार आधुनिक नियंत्रण प्रत्यक्ष दमन से अधिक निगरानी और आत्म-अनुशासन के माध्यम से कार्य करता है। विश्वविद्यालयों में बढ़ती प्रशासनिक निगरानी इसी प्रक्रिया का संकेत देती है। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उभरता है— क्या "शांत" परिसर लोकतंत्र की सफलता का संकेत है, या असहमति के लिए सीमित स्थान का परिणाम? लोकतंत्र की प्रकृति शोरगुल से नहीं, बल्कि बहस की संभावना से तय होती है। यदि बहस के स्थान सिकुड़ते हैं, तो लोकतांत्रिक सार्वजनिकता भी कमजोर पड़ती है। प्रशासनिक केंद्रीकरण इस प्रवृत्ति को और जटिल बनाता है। निर्णय-प्रक्रियाएँ अधिक ऊपर-केन्द्रित हो रही हैं और निर्वाचित निकायों की भूमिका अपेक्षाकृत सीमित दिखाई देती है। दक्षता और नियंत्रण के तर्क से प्रेरित यह प्रक्रिया विश्वविद्यालयों को धीरे-धीरे संवादात्मक समुदाय से अधिक प्रबंधित संस्थाओं में रूपांतरित करती प्रतीत होती है।

छात्र संघ चुनाव, लिंगदोह समिति और राजनीतिक भागीदारी का रूपांतरण

2006 में गठित लिंगदोह समिति ने छात्र संघ चुनावों में पारदर्शिता और शुचिता लाने का प्रयास किया। खर्च की सीमा, आयु सीमा, आपराधिक पृष्ठभूमि की जाँच जैसे प्रावधान लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को स्वच्छ बनाने के उद्देश्य से थे। सिद्धांततः ये सुधार आवश्यक थे, क्योंकि कई परिसरों में चुनावों का चरित्र अत्यधिक संसाधन-आधारित और बाहरी प्रभावों से प्रभावित हो चुका था। परंतु सुधारों का परिणाम सभी विश्वविद्यालयों में समान नहीं रहा। कुछ परिसरोंजैसे दिल्ली विश्वविद्यालयमें चुनाव नियमित रूप से होते रहे और छात्र राजनीति का सार्वजनिक चरित्र बना रहा। वहीं कई अन्य विश्वविद्यालयों में चुनाव वर्षों तक स्थगित रहे या अत्यधिक सीमित स्वरूप में आयोजित हुए।जब छात्र संघ चुनाव न हों, तो छात्र प्रतिनिधित्व का औपचारिक ढाँचा कमजोर हो जाता है। छात्र संगठन सक्रिय तो रह सकते हैं, परंतु उनकी वैधानिक शक्ति घट जाती है। इससे विश्वविद्यालय प्रशासन और छात्र समुदाय के बीच संवाद की संरचना बदल जाती है।

यहाँ एक सूक्ष्म परिवर्तन भी देखा जा सकता है: पारंपरिक विचारधारात्मक छात्र राजनीति की जगह मुद्दा-आधारित, अल्पकालिक और डिजिटल-आधारित सक्रियता ने ली है। यह परिवर्तन पूर्णतः नकारात्मक नहीं है; परंतु इससे लोकतांत्रिक संस्थागत अभ्यास की निरंतरता प्रभावित होती है। लोकतंत्र केवल क्षणिक विरोध से नहीं, बल्कि संस्थागत संवाद से भी मजबूत होता है।